11.7 अल्प-विकसित देशों में कर के सिद्धान्त (Principles of Taxation in a Developing Economy)

इस बात की जांच की आवश्यकता है कि जिन कर सिद्धान्तों की विवेचना विकसित देशों के सन्दर्भ में की जाती है (जैसे, तटस्थता का सिद्धान्त, समानता का सिद्धान्त, आदि) क्या वे विकासशील देशों के लिए भी उपयुक्त हैं? यदि नहीं तो निर्धन देशों की आवश्यकता के अनुसार किन सिद्धान्तों का सुझाव देना उचित होगा।

विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था के लक्षण विकसित देशों से भिन्न हैं। इसलिए विकसित अर्थव्यवस्था के अनुभवों के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्तों का उपयोग निर्धन देशों में करना उचित नहीं कहा जा सकता है। ऐसा करने के परिणाम भयानक हो सकते हैं। ड्यू का कहना है कि औद्योगिक देशों की कर व्यवस्था को निर्धन देशों में, विशेषकर विकास की प्रारम्भिक अवस्था में, लागू करना सबसे अधिक खतरनाक हो सकता है। इसी सिलसिले में मसग्रेव का कहना है कि कर व्यवस्था जिस रूप में वस्तुतः लागू की जाती है उससे अधिक अच्छी नहीं हो सकती चाहे कर सम्बन्धी कानून कितने भी उन्नत एवं परिष्कृत क्यों न हों। इस बात को स्वीकार करना होगा कि सामाजिक रीति-रिवाज, प्रशासनिक कौशल, व्यावसायिक संगठन तथा व्यवहार ही वह पृष्ठभूमि है जिसका प्रभाव कर नियमों की क्रिया पर पड़ता है। प्रभावी होने के लिए कर नियम को वातावरण के साथ समायोजन करना होगा। इसे भी स्वीकारना होगा कि जटिल एवं परिष्कृत स्कीम आदर्श परिस्थितियों में सर्वाधिक प्रभावी एवं न्यायपूर्ण हो सकती है, किन्तु वास्तविक स्थिति में काफी प्रभावहीन तथा असमान हो सकती है।

विकासशील देशों में करारोपण के उद्देश्य

विकासशील देशों में आयोजित आर्थिक विकास के सन्दर्भ में करारोपण के उद्देश्य होते हैं—(1) विकास, (2) समानता एवं (3) स्थिरता। अब इन तीनों की जांच विस्तार से की जाय।

(1) विकास उद्देश्य

आर्थिक वृद्धि की माप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि के रूप में की जाती है। इसके लिए निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश (Investment) की दर को तेज करना होगा। विदेशी सहायता की अनुपस्थिति में, निवेश की वित्त व्यवस्था घरेलू बचत के द्वारा की जाती है। घरेलू बचत के तीन अंग हैं—पारिवारिक बचत, निजी एवं सार्वजनिक कम्पनियों की बचत तथा सरकार की बचत (जो सरकार की आय तथा चालू लोक व्यय का अन्तर होता है)। कर नीति ऐसी होनी चाहिए जो बचत के तीनों अंगों पर अनुकूल प्रभाव डाले। इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति कर का भुगतान अपने चालू व्यय में कटौती करके ही करे, बचत को घटाकर नहीं। कम्पनियों का लाभ पर्याप्त हो ताकि लाभांश बांटने के बाद भी काफी लाभ बच जाय। सरकार की बचत में वृद्धि के लिए जरूरी है कि कर राजस्व में पर्याप्त वृद्धि हो। सभी लक्ष्यों की एक साथ प्राप्ति कठिन होती है, फिर भी कर की रचना ऐसे ढंग से होनी चाहिए ताकि यथासम्भव इनके मध्य सामंजस्य स्थापित किया जा सके। इसके लिए परोक्ष करों पर ही निर्भर करना पड़ेगा जैसा अगले अध्याय 12 में बताया जायेगा।

आर्थिक विकास के सिलसिले में कर नीति का अधिक प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस बात से है कि सार्वजनिक क्षेत्र में विकास व्यय की वित्त व्यवस्था के लिए पर्याप्त कर आय प्राप्त हो। इसके लिए करारोपण में निम्न गुण होने चाहिए : (1) लोच (Elasticity), (2) विस्तृत आधार (Comprehensive base) तथा (3) प्रशासनिक कार्यकुशलता (Administrative Efficiency)। लोचदार कर की यह विशेषता है कि इसमें अन्तर्निहित लचक (Built-in flexibility) होती है। इसका यह अर्थ है कि कर की दर या आधार में परिवर्तन किये

Scanned with CamScanner

बिना ही आय में वृद्धि के कारण कर आय में ऐसी वृद्धि हो कि इसकी आय लोच एक से अधिक रहे। कर आय केवल आय लोच पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि इस बात पर भी कि कर का आधार कितना विस्तृत है। इसलिए कोशिश यह होनी चाहिए कि कर के क्षेत्र में विस्तार किया जाय। प्रशासनिक कार्यकुशलता का सम्बन्ध एडम स्मिथ के मितव्ययिता के सिद्धान्त (Canon of Economy) से है। राजस्व वसूल करने का खर्च कम होना चाहिए। अतः ऐसे करों को ही चुनना चाहिए जिनसे न्यूनतम वसूली लागत पर अधिकतम आय प्राप्त हो सके।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में विकासोन्मुख कर नीति का प्रभाव निजी क्षेत्र पर क्या पड़ता है, इस प्रश्न को भुलाया नहीं जा सकता। ऐसी कर नीति अपनानी होगी जिससे सरकार को अधिक-से-अधिक राजस्व मिले तथा निजी बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित भी करे। कर की इस भूमिका की तटस्थता के सिद्धान्त के साथ मेल नहीं है, जबकि तटस्थता विकसित देशों में कर का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। तटस्थ कर वे हैं जो न तो वस्तुओं के मध्य उपभोक्ता के चयन में विकृति पैदा करते हैं या वैकल्पिक रोजगारों के मध्य मजदूरों के चयन में और न ही उत्पादन के साधनों के मध्य उत्पादनकर्ता के चयन में। इसलिए तटस्थ पर किसी भी प्रकार की आय को छूट नहीं देता है क्योंकि ऐसा करने पर कर व्यवस्था असमान, अकुशल एवं साधनों के आबंटन में विकृति पैदा करने वाली हो जायेगी। ऐसी धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि बाजार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा में ऐसे आबंटन की सम्भावना रहती है। पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा वास्तविक नहीं है। अतः बाजार द्वारा निर्धारित आबंटन भी आदर्श नहीं। यह विशेषकर विकासशील देशों के लिए सही है। इन देशों में आदर्श आबंटन वही है जो विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करता है। योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कर की भूमिका आर्थिक नियन्त्रण के विचलन यन्त्र (diversionary instrument) की तरह है। इस यन्त्र के रूप में कर का निम्नलिखित उपयोग हो सकता है :

(क) बचत एवं उपभोग तथा विभिन्न वस्तुओं की खरीद के मध्य कर पारिवारिक चयन को प्रभावित कर सकता है। बचत को प्रोत्साहित करने सम्बन्धी प्रावधान प्रत्यक्ष करों में शामिल किये जाते हैं। उपभोग को हतोत्साहित करने के लिए परोक्ष करों का उपयोग किया जाता है।

(ख) योजना के उद्देश्यों के अनुरूप श्रम, पूंजी तथा भूमि के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्यक्ष करों में अनेक प्रावधान शामिल किये जा सकते हैं।

(ग) उत्पादन विधि के मध्य चयन के लिए भी करों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक तटस्थता का सिद्धान्त विकासशील देशों के लिए अधिक संगत है।

गौतम माथुर एवं विषम कर (Gautam Mathur's Disparity Tax)

गौतम माथुर ने एक भिन्न रास्ता अपनाया है। उनका कहना है कि करारोपण का प्रमुख उद्देश्य आय प्राप्त करना नहीं है। उन्होंने कहा कि विकासोन्मुख लोक वित्त से करारोपण के कार्यों की सूची में से आय प्राप्त करने के उद्देश्य को निकाल बाहर करना चाहिए। उनके अनुसार कर का प्रमुख कार्य आबंटन है। इस तरह करारोपण में फोकस आवंटन पर चला जाता है, न कि आय प्राप्त करने पर।

मुद्रा-स्फीति से निर्धन देश अधिक त्रस्त होते हैं। यह बात आवश्यक एवं अनावश्यक दोनों प्रकार की वस्तुओं की कीमतों के लिए सही है। प्रभावशाली वर्ग जैसे श्रमिक संघ, सरकारी कर्मचारी, आदि अपनी मजदूरी/वेतनों में वृद्धि के माध्यम से स्फीतिक प्रभाव से काफी दूर तक बच जाते हैं, लेकिन निर्धन, खासकर असंगठित वर्ग ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए कीमत स्थिरता के साथ आर्थिक विकास महत्वपूर्ण हो जाता है।

स्थिर आर्थिक विकास में करारोपण की भूमिका की विवेचना के लिए गौतम माथुर ने व्यय को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है—एक वह है जिससे मुद्रा-स्फीति की सृष्टि होती है और दूसरा वह जिससे स्फीति मन्द पड़ जाती है। लम्बे काल में पूरा होने वाले भारी निवेश प्रथम वर्ग में आते हैं। शीघ्र पूरे होने वाले निवेश जिनसे उत्पादन तुरन्त मिलने लगता है दूसरे वर्ग में हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन दोनों प्रकार के निवेशों का सन्तुलित विकास हो। ऐसा होने पर ही उपभोग की मांग में वृद्धि दर इन वस्तुओं की आपूर्ति कर के अनुकूल होगी। इससे स्फीति का सृजन नहीं होगा। उनके विचार में घाटे की वित्त व्यवस्था ही सिर्फ मुद्रा-स्फीति के लिए जिम्मेदार नहीं है। यदि सिर्फ आय प्राप्त करने के ख्याल से ही कर लगाया जाय तो इससे कीमतें बढ़ेंगी।

Scanned with CamScanner

उनका कहना है कि भारत जैसे विकासशील देश में जहां बेरोजगारों की संख्या अत्यधिक है तथा योजना में भारी उद्योगों पर बल दिया जाता है, कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो उपभोग में कटौती करे तथा उत्पादन में वृद्धि। जो कर प्रणाली ऐसा करने में सक्षम है उसे ही गौतम माथुर ने विषम कर (disparity tax) कहा है। ऐसे कर के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(क) अनावश्यक उपभोगों पर व्यय में कमी करके स्फीति पर रोक;

(ख) योजना की प्राथमिकता एवं व्यूह रचना के अनुसार संसाधनों का आबंटन; तथा

(ग) आदर्श आबंटन से विचलन (deviation) को न्यूनतम करना।

माथुर का कहना है कि काल्डोर का व्यय कर या परोक्ष कर उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकते। अतः उन्होंने अपव्यय पर कर (tax on misexpenditure) की बात कही है।

माथुर की धारणा अपने स्थान पर स्फीति के संकुचित दृष्टिकोण से सही हो सकती है, किन्तु विकासशील देशों की सरकारों की लोक व्यय सम्बन्धी आवश्यकता को देखते हुए अव्यावहारिक लगती है। सिर्फ करों के उपयोग द्वारा ही मुद्रा-स्फीति की रोकथाम करना करारोपण से अत्यधिक आशा करना है, खासकर विकासशील देशों में जहां कर अनुपात इतना कम है।

Scanned with CamScanner